ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 10 | विक्रम संवत् 2077-78 अक्टूबर 2021 | पृष्ठ 34

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 10 | विक्रम संवत् 2077-78 अक्टूबर 2021 | पृष्ठ 34

परामर्शदाता
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
पण्डित अनन्त शर्मा
डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
सोहन लाल गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रामदेव साहू
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

सहयोग
नवीन जोशी

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय		3
2.	भारतीय धर्म एवं संस्कृति में श्राद्ध : एक अनुशीलन	डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी	4
3.	पितृभ्यःस्वधा	प्रो. शम्भू कुमार झा	8
4.	विवेकी राय के उपन्यासों में आंचलिकता	डॉ. दीपिका विजयवर्गीय	20
5.	हिन्दी साहित्य में रोमन लिपि का प्रयोग	डॉ. वत्सला	27
6.	राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	31

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2021 का दशम अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस अंक में सर्वप्रथम डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी द्वारा लिखित ''भारतीय धर्म एवं संस्कृति में श्राद्ध : एक अनुशीलन'' धर्मशास्त्रीय चिन्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। तत्पश्चात् प्रो. शम्भू कुमार झा द्वारा लिखित 'पितृभ्यःस्वधा' लेख श्राद्धविज्ञान विषयक विविध पक्षों का वैदिक सन्दर्भ में प्रस्तुतीकरण करता है। तृतीय लेख डॉ. दीपिका विजयवर्गीय द्वारा लिखित 'विवेकीराय के उपन्यासों में आंचलिकता' आधुनिक हिन्दी साहित्य की समालोचना के क्षेत्र में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों का प्रतिपादन करता है। इसमें समीक्षाशास्त्रीय मानकों के क्रम से सामयिक साहित्यसृजन पर व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है। डॉ. वत्सला द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य में रोमन लिपि का प्रयोग' लेख में रोमन लिपि के वैज्ञानिक स्वरूप को बतलाया गया है तथा हिन्दी साहित्य में उसके प्रयोग विषयक औचित्य को प्रतिपादित किया गया है।अन्त में डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के 'राष्ट्रोपनिषत् प्रस्तावना शतकम्' के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

भारतीय धर्म एवं संस्कृति में श्राद्ध : एक अनुशीलन

डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी
प्रभारी, संस्कृत शोध प्रकोष्ठ
महाराजा मानसिंह पुस्तकप्रकाश शोधकेन्द्र,
मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़ दुर्ग, जोधपुर

श्राद्ध के लक्षण को वीरमित्रोदयकार ने स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुये कहा था, जिसमें उन्होंने मनु के वचन का प्रमाण देते हुये कहा है, कि प्रजा के निःश्रेयस् के लिये पितर देवता कहे गये हैं। इसमें ब्राह्मण आहवनीयाग्नि के रूप में है, प्रत्येक मास के अपर पक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष की अमावस्या को अपराह्ण काल में श्राद्ध करना चाहिए। आपस्तम्ब ने श्राद्ध की दृष्टि से अपराह्ण काल को श्रेष्ठ कहा है। उस काल में प्रेतों व पितरों का उद्देश्य रख कर विप्र को ऐसा भोजन प्रदान किया जाय, जो स्वयं को भी प्रिय हो, वही श्राद्ध कहा है। श्राद्ध को न्यायशैली में पारिभाषित करते हुये कहा है, कि द्रव्यत्याग के द्वारा आहवनीय अग्निस्वरूप ब्राह्मण की तृप्ति ही श्राद्ध है। मरीचि ने कहा है, कि जो श्रद्धापूर्वक दिया जाय, उसे ही श्राद्ध कहा गया है। इसमें प्रेत शब्द से तात्पर्य है, ऐसे पूर्वज जिनका सपिण्डीकरण नहीं किया गया है तथा जिन पूर्वजों का सपिण्डीकरण कर दिया गया है, वे 'पितर' शब्द से अभिहित है। अतः ऐसा (उपर्युक्त श्रद्धापूर्वक जो स्वयं को भी प्रिय हो, ऐसा भोजनरूपी)दान ही श्राद्ध कहा गया है।

आपस्तम्ब-मरीचि-बृहस्पति-ब्रह्मपुराणादि में कहे गये वचनों का पर्यालोचन करते हुये श्राद्धचन्द्रिकाकार कहते हैं, कि ब्राह्मण के द्वारा आहवनीय रूप से त्याग किये गये विशेष अन्न को ग्रहण करना ही श्राद्ध पद से विवेचित है। इसके साथ ही गन्धादि (पिण्डदान के साथ पिण्डपूजन के अन्तर्गत गन्धादि से पिण्ड का पूजन), अग्नौकरण विकिरदान आदि श्राद्ध नहीं वरन् श्राद्धप्रक्रिया के अंग कहे गये हैं। ब्राह्मण द्वारा जो सिद्धि होती है, उसके अंगत्व को प्रकट करते हैं। अतः इसके कारण अग्नि आदि में प्रक्षेपादि के द्वारा भी श्राद्ध कहा गया है। साथ ही पित्र्यबलिदान आदि कर्म में भी कोई अतिव्याप्ति नहीं कही गयी है। छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है कि श्राद्ध, पितृयज्ञ तथा पितरों के लिये बलिदान एक ही कार्य है। इसलिये पिण्डपितृयज्ञ श्राद्ध का ही स्वरूप कहा गया है। गोभिल भी इसी वचन का अनुसरण करते हुये इसका समर्थन करते हैं।

प्रमीता से तात्पर्य देवता से है, अतः जिस प्रकार यज्ञ में देवता हवि को ग्रहण करते हैं, तथैव श्राद्ध में फलभागिता उद्देश्यक ब्राह्मण त्यागे गये अन्न को ग्रहण करता है, अतः पुनः यहाँ किसी प्रकार की अतिव्याप्ति नहीं हुई। पुनः जो 'अन्न' पद का प्रयोग किया गया है, वह भोजन योग्य अर्थ को प्रकट करता है, अतः श्राद्ध में भोजन की ही प्रधानता है,

स्वर्णादि द्रव्य की नहीं। जैसा कि नृसिंहपुराण में कहा है कि श्राद्ध दिव्य पितरों के लिये अपने पितरों के लिये ऋषियों मनुष्यों (सनकादि) तथा स्वयं के लिये किया जाता है। श्राद्ध के पुनः गौण, मुख्य तथा साधारण आदि से भेद कहे गये हैं। जो प्रमीत है, उसे उद्दिष्ट करके किया गया त्याग ही श्राद्ध पद से अभिहित होने के कारण अन्न के उत्सर्ग एवं पिण्डदान दोनों में से किसी एक के किये जाने को भी श्राद्ध पद से कहा गया है। इसलिये ब्रह्मपुराण में 'अन्नत्याग के द्वारा श्राद्ध करना चाहिये' ऐसा कह कर केवल अन्नत्यागरूपी एक ही कर्म के द्वारा श्राद्ध सम्पादित करना कहा है। इसी प्रकार आहिताग्नि के द्वारा पित्रर्चन के समय पिण्डदान के द्वारा ही श्राद्ध करने का निर्देश किया गया है।

हारीत कहते हैं कि नित्यश्राद्ध में अर्घ्य व पिण्ड वर्जित है। शास्त्रोक्त तिथि आने पर पितृदेवताओं के लिये विशेष पूजा करनी चाहिये। देवीपुराण के अनुसार मघाश्राद्ध के समय पिण्डदान का निषेध दिखायी देता है। सभी कार्य अंग हैं, कहा है कि अग्नि में देने से देवलोक को प्राप्त हुये पितर तृप्त होते हैं तथा तर्पण से पितृलोक को प्राप्त पितर तृप्त होते हैं एवं तीन पिण्ड भूमि पर दान करने से नरकस्थ पितर तृप्त होते हैं। गयादि में पिण्डदान विधि मात्र कही गयी है, तथापि वह अंगभूतकर्म है, अतः वह केवल कर्मान्तर है। शूलपाणि कहते हैं, श्राद्ध विधिपूर्वक करने पर दोनों ही कर्मों को करने में से एक को निषेध कहा है, ऐसा होने पर भी सर्वश्रेष्ठ कहा है, कि अन्नोत्सर्ग एवं पिण्डदान दोनों की ही प्रधानता है।

कुछ अन्य अग्नि में आहुति को भी प्रधानता देते हैं। अग्नौकरण के उद्देश्य से ही कव्यवाहन आदि का ग्रहण करते हुए होम के अन्तर्गत ब्राह्मण में ही अग्नि का भाव रखते हुये ब्राह्मण को भोजन करवाना ही अग्नौकरण का स्वरूप माना है।

शूलपाणि ने तो सम्बोधन पद से उच्चरित तथा पितादि के लिये चतुर्थ्यन्त पद के द्वारा हवित्याग को ही श्राद्ध कहा है। इसमें शूलपाणि ने जो पितरादि शब्द का प्रयोग किया है, उसमें देवता भी सम्मिलित है, अतः देवश्राद्धादि में भी श्राद्धशब्द मुख्य रूप से व्यवहृत है।

मैथिलों के अनुसार वेद में कहे अनुसार निर्दिष्ट पात्र का आलम्बन करके हवि का त्याग ही श्राद्ध है। पिण्डदान इस कर्म का अंगस्वरूप है। श्राद्ध करके क्रोधादि नहीं करते हुये द्विजाति को श्रद्धापूर्वक उष्ण अन्न देना चाहिये। यह तथ्य पिण्डपितृयज्ञ के सन्दर्भ में कहा है।

शंका हो सकती है कि त्याग श्राद्ध नहीं है, वरन् पितरों को उद्दिष्ट करते हुये विप्र को दिया गया ही श्राद्ध कहा जाता है। ऐसा ब्रह्मपुराण में कहा है, पुनः मरीचि के अनुसार श्रद्धापूर्वक जो दिया जाय वही श्राद्ध कहा गया है। स्मृत्यन्तर के अनुसार प्रमीत पिता के पुत्र द्वारा प्रयत्नपूर्वक दिया जाना ही श्राद्ध है। अतः यहाँ दानकर्म के द्वारा द्रव्य में श्राद्धत्व उत्पन्न

हो जाता है, जब त्यागा जाय अर्थात् त्याग किया जाय तो वह द्रव्य ही श्राद्ध है। श्रद्धापूर्वक दिया जाना ही श्राद्ध कहा गया है। बृहस्पति के वाक्य के अनुसार श्रद्धापूर्वक दिया जाना अर्थ में श्राद्ध शब्द रूढ़ हो गया है । इसका कारण है कि इसका अन्यत्र प्रयोग नहीं होता । पितरों के लिए ही श्रद्धापूर्वक दिये जाने एवं उसी अर्थ में सतत प्रयोग के कारण यह शब्द पितर कर्म से सम्बन्धित रूढ़ हो गया है। यद्यपि विष्णुधर्मोत्तरादि पुराणों में दिये गये भावों के अनुसार कहा है कि -

श्रद्धा पूर्वक किया जाना ही धर्म है, अतः धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिये। श्रद्धा के द्वारा ही सभी कार्यों की सार्थकता है इसलिये कहा है कि श्रद्धावान् ही श्राद्ध करे। कात्यायन कहते हैं कि-श्राद्ध में श्रद्धा का ही प्रधान अंग रूप में होने के कारण श्रद्धा ही प्रधान है। अतः नन्दिपुराण में कहा है कि-श्रद्धा सभी भूतों की माता है इसलिये श्रद्धा का श्राद्ध कार्यों में विशेष स्थान है। यहाँ श्रद्धा की प्रशस्ति कही गयी है। इस प्रकार देखा जाय तो सकल स्मृति साहित्य में श्राद्ध का त्याग रूप ही सिद्ध होता है, अतः किसी ब्राह्मण के लिये दिये जाने वाले भोजन में 'श्राद्ध' पदार्थ क्या है? यह विचारणीय है। ब्रह्माण्ड पुराण के वचन हैं कि भोजनादि के द्वारा पितामह आदि पितरों का पूजन करना चाहिये, तदुपरान्त प्रपितामह एवं उसके पश्चात् वृद्धप्रपितामहादि का क्रमपूर्वक भोजन से यजन करना चाहिये, अतः यहाँ मरीचि के वचनों के साथ एकवाक्यता प्रमाणित होती है, कि प्रेत व पितरों को उद्दिष्ट करते हुये जो स्वयं को प्रिय लगे ऐसा भोजन श्रद्धापूर्वक देना ही श्राद्ध है।

वायुपुराण में भी कहा है-श्राद्धं चैषां मनुष्याणां श्राद्धमेव प्रवर्तते।। मैत्रायणीय मानवगृह्यसूत्र में कहा है-श्राद्धमपरपक्षे पितृभ्यो दद्यात्-अष्टावक्रभाष्यः- तत् सत्यं विधीयते यस्यां बुद्धौ सा श्रद्धा उपवासादिभिरनुष्ठिता श्रौतस्मार्त्तादिषु कर्मसु आदरेण प्रवृत्तिर्या तया श्रद्धावान् उच्यते पुमान् श्रद्धया यन्निर्वर्त्यते तत् श्राद्धं रूढ्यापि पित्र्यं कर्मोच्यते तस्य कर्मणः साधनं यत्पायसादि द्रव्यं तदिह श्राद्धमित्युच्यते तदपरपक्षे पितृभ्यो दद्यात्। श्राद्धग्रहणं संज्ञार्थं तेनापरपक्षादन्यत्रापि स्मृतिवचनादयनमृताहतीर्थादौ अनेन विधिना श्राद्धं स्यात्। अपरपक्ष अर्थात् कृष्ण पक्ष में पितरों के लिये दिया जाने वाला अन्न ही श्राद्ध होता है। इस वाक्य को अष्टावक्र ने अपने भाष्य में कहा है, कि जिसकी सत्य में निष्ठा एवं बुद्धि है वह श्रद्धा है, अतः श्रुति व स्मृतियों में जो उपवासादि कहे गये हैं, उन कर्मो में आदरपूर्वक प्रवृत्ति होने पर वह श्रद्धावान् कहा गया है, इस प्रकार श्रद्धापूर्वक जो कर्म किया जाय, वही श्राद्ध सिद्ध होने पर भी 'श्राद्ध' शब्द पितरों से सम्बन्धित कर्म के लिये ही प्रयुक्त होता है, तथा इस कर्म को सिद्ध करने वाले साधन के रूप में दूध है अतः दूधादि द्रव्यों का अपर पक्ष में पितरों को प्रदान करना ही श्राद्ध कहा गया है। श्राद्ध केवल अपर पक्ष में ही नहीं वरन् स्मृति के वचनों के अनुसार मृतक के वार्षिक दिवस पर, तीर्थो में, विधिपूर्वक जो किया जाय वह श्राद्ध ही है।

श्राद्ध शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से यही कहा जा सकता है, कि पिण्डदान, ब्राह्मण को संस्कृत अन्न से जिसमें घृत,

मधु, दुग्ध, तथा दधि (दही) का बाहुल्य हो ऐसे अन्न से तृप्त करना एवं अग्नौकरण इन तीनों को मिला कर श्राद्ध कार्य कहा गया है। श्राद्धकल्पलता में कई प्रकार की शंकाओं का निवारण किया गया है।

शंका:- मार्कण्डेयपुराण के आधार पर यह तर्क कैसे ग्राह्य हो सकता है कि श्राद्ध में जो अन्न-पान दिया जाता है, वह पितरों के उपयोग के लिये विभिन्न द्रव्यों में परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि पितृगण विभिन्न स्थानों में मर सकते हैं और श्राद्ध बहुधा उन स्थानों से दूर एक ही स्थान पर किया जाता है, अतः दुष्कर्मों के कारण कोई पितर पशु रूप में परिवर्तित हो गये है, ऐसे स्थान-विशेष में उगी हुई घास वही है, जो सैकड़ों कोस दूर श्राद्ध में किये गये द्रव्यों के कारण उत्पन्न हुई है। इतना ही नहीं,यदि एक या सभी पितर पशु आदि योनि में परिवर्तित हेा गये हैं, तो किस प्रकार अपनी सन्तानों को आयु, धन आदि दे सकते हैं?

समाधान:- वस्तुतः आधुनिक समय में प्रत्येक तथ्य को प्रमाण एवं तर्क पर स्वीकारने की वृत्ति ने हमें अश्रद्धावान् बना दिया है। विज्ञान विषय में दशम कक्षा तक जो भी पढ़ा जाता है, उसमें मात्र दो-चार प्रतिशत तक का प्रयोगशालाओं में सत्यापन विद्यार्थी जीवन में देख कर शत प्रतिशत को विश्वास एवं श्रद्धा के आधार पर स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु लक्षाधिक वर्षों से परम्परा में जो विज्ञान है उस सांस्कृतिक विज्ञान को हम स्वीकारने में संशय अथवा तर्क की अपेक्षा रखते हैं। तथापि उपरोक्त शंका का समाधान भी हमें पुराणों में ही प्राप्त होता है। हरिवंश पुराण के हरिवंशपर्व के षोडश अध्याय में इसी विषय पर चर्चा है, जिसमें स्पष्ट कहा है कि स्वर्ग में जो आदि देवता के रूप में पितर विराजमान हैं, वे ही हमारे श्राद्ध को ग्रहण करते हैं अतः जब नाम, कुल, गोत्र का उच्चारण करके श्राद्ध किया जाता है, तो वे पितर देवता ही प्रसन्न होते हैं तथा वे ही हमारे पितरों को उनकी योनि में तृप्ति प्रदान करते हैं।

अतः सृष्टि के नियामक तन्त्र के अनुसार मनुष्य द्वारा अपने पितरों के लिये किये द्रव्य त्याग को ग्रहण करने वाले पितर देवता हैं, वे ही अपने द्वारा उस पदार्थ को भिन्न-भिन्न योनियों में गये हुये उस मनुष्य के पितरों को सन्तुष्ट करते हैं। अतः वसु, रुद्र, आदित्य रूप में पितर देवता ही श्राद्ध को ग्रहण करते हैं तथा मनुष्य के पितरों को उनकी योनि में सन्तुष्ट करते हैं, अतः शंका के अनुसार जो मनुष्य अपने पूर्वज पितर जो यदि पशु योनि में कहीं ऐसे स्थान पर है, जो श्राद्धकर्ता से सैकड़ों कोस दूर है, तो भी वे पितरदेवता उस योनि के पशु को घासादि तृण की पूर्ति करता है ऐसे में उस जीव की सन्तुष्टि ही उसके वंशज मनुष्य जातक को लोक की दृष्टि से सन्तुष्टि देता है। यह सृष्टितन्त्र में स्वतः होने वाली ऐसी क्रिया है, जैसे मनुष्य के शरीरतन्त्र में श्वासोच्छवास, भोजन का पचना, रक्त परिसंचरण आदि का कार्य इत्यादि। सृष्टि विज्ञान में कई तन्त्र स्वतः क्रियाशील हैं, इस वेदविज्ञान को समझन के लिये सायण, महीधर, उव्वट, भट्टभास्कर, पं.मधुसूदन ओझा, पं.मोलीलालशास्त्री जैसे वेद-मनीषियों के दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है।

पितृभ्य :स्वधा

प्रो. शम्भू कुमार झा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
ज.रा.रा.सं. विश्वविद्यलय, जयपुर

'यस्य वाक्यं स ऋषि'[1] इति सर्वानुक्रमण्यां निगदितम्। ऋग्वेदे सूक्तानि मण्डलक्रमेण नियताक्षराणि छन्दोबद्धानि परिगीतानि। उक्तञ्च जैमिनिना 'यत्रार्थवशात् पादव्यवस्था सा ऋक्'[2] बृद्ददेवतायां 'सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते'[3] ऋग्वेदे दशमे मण्डले शाङ्खायनस्यर्षे: त्रिष्टुप्जगतीभ्यामुपनिबद्धं पितृगणदेवताकं पितृसूक्तं चतुर्दशमन्त्रात्मकं पितृमहिमप्रकाशकं आमुष्मिकपथप्रदर्शकं लोकालोकविचारकं पठ्यते।

पितृसूक्तस्य सम्बन्ध: सामान्येन मृतात्मना साकं विभाति। पितृशब्दस्य प्रथमाबहुवचने पितर: ' इति रूपं सिद्ध्यति। लोके पितर इति शब्देन मृतकस्यावबोध: प्रचलित: कथमिति प्रश्ने जाते कश्चिन्न्यायोऽत्र प्रवर्तते। 'रूढिर्योगाद् बलीयसी'[4] अयमत्र पितर: मृतकस्य परिजनस्य कृते रूढ:, तस्मात् अयमेवार्थ:सामाजिकै: स्वीकृत:। तर्हि अत्र प्रश्न उदेति तेन मृतात्मना सह वास्तव्यानामस्माकं क: सम्बन्ध: शिष्यते शेषो वा। मृत: इति गत: तस्य त्याग: कर्त्तव्य:, तथैव च सामाजिकै: क्रियते। मृतकस्य शरीरं केनापि प्रयासेन स्थातुं न शक्यते, त्यागपक्ष एव साध्य:।

त्यागोऽपि शास्त्रेण विधिना विधेय:। शास्त्रमत्र वदति 'कृमिविष्ठाभस्मरूपत:'[5] त्रिधावस्था शरीरस्य। भूमौ खननं क्रियते चेत् शरीरं कृमिमयं भवति वने वा जले वा प्रक्षिप्यते चेत् काकोलूकमत्स्यादिभिर्भक्षणेन विष्ठारूपं तच्छरीरं परिमणमते। अग्निदाहे सति भस्मरूपं च शरीरं प्रोक्तम्। भारते आश्रमाणां संप्रदायानां, वर्णानां बाहुल्ये मृतशरीरस्य संस्कारेऽपि भेदोऽवलोक्यते। भेदबाहुल्ये च निर्विवादरूपेण सम्पूर्णे जगति तच्छशरीरं त्याज्यमिति स्पष्ट: सम्बन्धशब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थ:-सम्यक् बध्नातीति संबन्ध:। वर्तमानानां वास्तव्यानां मानवानां भौतिकं शरीरं मातृपितृभ्यां सकाशात् लब्धमिति। कस्यापि शरीरं स्वयमेवोत्पन्नं न मन्यते कामं तस्य शरीरस्य जैविक: पिता माता च समाजात् भीतौ सन्तौ स्वकीयं नाम न ददत:। तद्यथा कुमारिकाया:

पुत्रं, विधवाया: वैधव्ये सन्तानलाभ: समाजे अस्वीकृत:। अत: भयात् तस्य परित्याग:। तस्मात् भगवान् पाणिनि: सूत्रयामास-'कन्याया:कनीन च'[६] व्यास: तथैव आसीत् श्रुतिर्वदति - 'आत्मा वै जायते पुत्र:'[७] अन्यच्च पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते।'[८] पुनश्च निरुक्ते -

'तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुन:'[९] अयं भाव: पतिरेव गर्भं प्रविशति बिन्दुमाध्यमेन तथा पूर्णे गर्भे उत्पन्नो भवति स जातक: पितु: प्रतिकृति:। तस्मात् विधिपूर्वकस्य जातस्य पितुर्धने स्वतोऽधिकार: अङ्गीकृत:। एषा धर्मशास्त्रीया व्यवस्था भारते प्रचलिता। अयं तावत् वास्तविक:शास्त्रीय: सामाजिकश्च सम्बन्ध: मृतात्मना सह सन्तते:। पितरोऽस्माकं पालका: पारलौकिकाश्च। पितर: सदा सूत्रात्मना वंशस्थान् सर्वान् परिपालयन्ति। अस्माकं समेषां तै: पितृभि: सह नियत: संबन्ध:। कदापि स न जहाति, अस्मान् बहुप्रयत्नेऽपि तस्य संबन्धस्य विच्छेद: असम्भव:।

इदानीं प्रकृतमनुसरामि-

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमा: पितर: सोम्यास:।

असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।।[१०]

मन्त्रेऽस्मिन् पितृणां त्रिधा विभाग: प्रदर्शित:। विद्यामधीत्यश्रौतकर्मानुष्ठानं च विधाय पितृत्वं प्राप्ता: उत्तमा:। सर्वं वेदे प्रतिष्ठितम्। श्रौतकर्मणामनुष्ठानं सदा विद्याग्नियोग्यतासंयोगसाहित्यात् संभवति। विद्या इत्युक्ते वेदाध्ययनमध्ययनविधिपूर्वकं, अग्निराधानविधिपूर्वकं योग्यता च अङ्गवैकल्यादिराहित्यम्। श्रौतकर्मानुष्ठानं श्रमसाध्यं ज्ञानसाध्यं द्रव्यसाध्यं च। श्रौतानुष्ठाने दम्पतीभ्यामेव प्रवेश:। एवं चास्मिन् कलिकाले श्रौतकर्म दु:साध्यमभवत्। मध्यमा:पितर: स्मार्तकर्ममात्रतत्परा: तद्यथा वापीकूपतडागादीनां प्रतिष्ठात:। अधमा: सर्वथा संस्कारमलिना:। एतेषां त्रयाणां कृते हविर्दानं मन्त्रे प्रतिपादितम्। एते त्रय: अस्माभि: प्रदत्तानि हवींषि प्राप्नुवन्तु। इमे अस्माकं कृते सौम्या: अनुग्रहकारका:भवन्तु ये पितर: 'अवृका:' वृका: वनपशव:हिंसका:। तद्रहिता: अवृका:, ऋतज्ञा:, सत्यज्ञा:, यज्ञज्ञा: यज्ञे प्राणरक्षार्थं समागता: ते सर्वे अस्मानवन्तु रक्षन्तु।

उदीरताम् 'उत्तमं हवि: प्राप्नुवन्तु'[११] इति सायण:। 'उत्तिष्ठन्तु'[१२] इति वेंकट:। अत्र पाश्चात्यानां किं मतं तदालोच्येत। अवर:, परास:, मध्यमा: - त्रिविधा: पितर:। अवर: निकृष्टा:। परास: उत्तमा: स्पष्टमन्यत्।

Let the lower the upper. the intermediate pitrs, rise up.[१३]

" May the soma loving fathers, the lowest the highest and the middle arise."[१४]

अवृकाः- Friendly[१५] Gentle[१६]

ऋतज्ञाः - Knowing right[१७]

ऋतज्ञाः - Righteousness[१८]

सोम्यासः - सोमसम्पादिनः[१९]

'They who deserve a share of soma'[२०] "soma loving"[२१]

उत्तमाः मध्यमाः अधमाश्चेति क्रमेण अन्तरिक्ष-स्वर्ग-पृथिवीलोकेषु वसन्ति। एतदतिरिक्तं अग्निष्वात्ताः, बर्हिषदः, सौम्याश्च पितरः श्रूयन्ते। ज्योतिषशास्त्रे पितृलोकविषये विवेचनं प्राप्यते - 'विधोरुर्ध्वभागे पितरो वसन्ति'[२२]

द्वितीयो मन्त्रः -

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।[२३]

मन्त्रेऽत्र पूर्वाः पितरः उपराश्च पितरः ख्यातपूर्वाः ते सन्ति, ये यजमानात् जन्मतः प्रागेव पितृत्वं गताः पितामहादयः। उपराः पुनः बन्धुवर्गरूपाः ज्येष्ठाः कनिष्ठाश्च भ्रात्रा पितृत्वं प्राप्ताः। ये पृथिव्यामागत्य संस्थिताः ये चान्तरिक्षे कर्मनिष्ठाः अत्र उपनिष्ठाः प्रजाजनेषु आसीनाः सन्ति तेषां समेषां कृते नमस्कारवचनं व्याहरामि।

अस्मिन् लोके अस्माकं दायित्वं भवति यत् पितृदिने क्षयाहे तिथौ च श्राद्धादिकं विधेयम्। तद्दिने पितरः निश्चयं कव्यग्रहणार्थमागच्छन्ति। पुराणे च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता निगदिता तद्यथा-

जीविते वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।।[२४]

अथ तृतीयःमन्त्रः-

आऽहं पितॄन् सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।[२५]

मन्त्रार्थकाले ऋषिर्वदति अहं पितृगणान् सम्यक् जानामि, भक्त्या आदरेण च ते आकृष्टा: भवन्ति इति ज्ञाने नास्ति संदेह: अहं इदमपि जानामि विष्णो: यत्क्रमणं त्रिषु लोकेषु भवति तत्सर्वं जानामि। तस्य परमात्मन: सम्पूर्णकार्याणामत्र गतिं चाहं वेद्मि। एतदतिरिक्तं चाहमिदं जानामि यत् ते पितर: श्राद्धादिकर्मसु कुशेषु आसीना: सन्त: अन्नादिकं भुञ्जते सम्पूर्णं सोमाशं च लभन्ते। अहं यजमान: साक्षात् देवपित्रो: कर्म जानामि।

आ अवित्सि – आभिमुख्येन लब्धवानस्मि[२६]

स्वधा शब्द: – स्वधा वै पितृणामन्नम्[२७]

स्वधा – जलम्[२८]

"Self position self power sacrificial offering"[२९]

स्वधा – Funeral offering[३०] oblation[३१]

श्रद्धया भक्त्या च पितृगणस्य साक्षात् दर्शनं भवति स्म। इदानीमपि कर्तुं शक्यते।

चतुर्थ: मन्त्र:-

बर्हिषद: पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आगताऽवसा शन्तमेनाथा न: शं यो ररपो दधात।[३२]

बर्हिषद: पितर: इति सम्बोधनपदम्। 'कौशं बर्हि:'[३३] बर्हिषि सीदन्तीति बर्हिषद: पितर: कुशासने उपविष्टा:यज्ञादौ। पुनश्च तैत्तिरीयब्रह्मणे – 'यै वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषद:'[३४] सायणाचार्यस्य मते 'यागं कृत्वा प्रेत्य पितृलोकं प्राप्ता: बर्हिषद:'[३५] हे पितर: अस्मान् नवीनान् यज्ञसंपादकान् यजमानान् रक्षन्तु। युष्मभ्यं हव्यं चकृमहे, अत:सर्वे बर्हिषद: एतानि हवींषि सेवध्वम्। ते हविर्जुष्टवन्तो यूयं शंतमेन सुखतमेन रक्षणेन अस्माकं समक्षमाध्यात। आगत्य च अस्मभ्यं शम् सुखं यो: दु:खवियोगं अरप: निवापञ्च दत्त।

अत्रायं विशेष: पितर: दिवंगता: स्व-स्व कर्मानुसारं शरीरमवाप्नुवन्ति। हविर्ग्रहणाय ये यज्ञादौ संप्राप्ता: ते प्रायेण वायवीयरूपधरा: सन्ति।

शं यो: अरप: दधात इत्यस्य व्याख्यायां व्रजबिहारी चौबे महोदयेन न्यू वैदिक सेलेक्श्यान मध्ये लिखितं-

"bestow on us happiness, health and sinlessness"[३६]

पाश्चात्यानां चिन्तनमपि तथैव विभाति ''शम् -Health यो:-blessing अपर:-Free from hurt"[३७]

शं यो: – Health and happiness-[३८]

अरप:दधात–पापरहितम् इति सायण:। Padron from Sian-[३९]

पञ्चमो मन्त्र:-

उपहूता पितर: सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।[४०]

पितर: अनुग्रहसम्पन्ना: यज्ञीयद्रव्याणामुपयोगाय आहूता: सन्ति। यानि द्रव्याणि तेषां पितृणां कृते निधिवन्ति तृप्तिप्रदानि च भवन्ति। हविर्द्रव्याणां भोगार्थं सर्वे इह यज्ञे आगच्छेयु: अस्माकं स्तुतिं श्रुत्वा कल्याणं च कुर्यु:। पितृकृपया सन्ततय: कुशासने श्राद्धादौ उपवेशनं कुर्वन्ति। पितृगणा: वंशस्थानां जनानां संरक्षणाय सर्वदा तत्परा: भवन्ति। वयं तान् न पश्याम: यतो हि ते दिव्यतेजोमयदेहधारिण: भवन्ति। यथा पादपानां संरक्षणं वयं कुर्म:। पादपानां इच्छा किमस्ति न जानीमो वयम्। परन्तु बहुभिरुपायै: जलादिप्रदानेन कण्टकादिभिराच्छादनेन तथा चौषधप्रदानेन रक्षामो वयम्, पादपा: अस्मान् जानन्ति न वा। अस्य तात्पर्यं भवति पादपेभ्य: अधिकं स्वामिन: नैजं सौख्यं, जीवनं च पादपेषु पश्यन्ति। पितरश्च वंशस्य विस्तारं तथैव वाञ्छन्ति उक्तञ्च गारुडे–

ऐष्टव्या: बहव:पुत्रा: यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।[४१]
गौरीं विवाहयेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।।

षष्ठो मन्त्र:-

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितर: केनचिन्नो यदव आग: पुरुषता कराम।।[४२]

पितृकर्म सदा दक्षिणस्यां दिशि भवति तत्रापि अपसव्येन पितृकर्म इति शास्त्रसम्मतं वच:। प्राचीनावीती इत्युक्ते यज्ञोपवीतं दक्षिणस्कन्धे धार्यम् इति। सव्येन देवकार्यं। सव्यमिति वामस्कन्धे ब्रह्मसूत्रं भवेत्। उक्तञ्च शतपथब्राह्मणे – ''अथैनं पितर: प्राचीनावीतिन: सर्वजान्वाच्य''[४३] हे पितृगणा: यूयं सर्वे वामजानुं पातयित्वा दक्षिणाभिमुखा: सन्त: भूमौ उपविश्य क्रियमाणमिदं पितृकर्माभिष्टुत। अभिष्टवनेन सर्वे पितर: आनन्दमग्ना: भवन्ति। स्वभावतो वयं मनुष्या: अनृतभाषिण: मर्त्या: एतस्माद्धेतो: ज्ञानाज्ञानयो: अपराधं चक्रु: (कृतवन्त:) तथापि अस्मदीयभावेन मा हिंसिष्ट न अस्मान् वधिष्ट।

आगः – अपराधः। आगःशब्दे सान्तो नपुंसकलिंगः अपराधवचनः[४४] पुरुषता–पुरुषस्य भावःपुरुषता। ''तस्य भावस्त्वतलौ''[४५]। अल्पायुस्त्वात् अल्पकालनिवासत्वात् मनुष्यः मिथ्याभाषणं करोति – 'सत्यं देवाः अनृतं मनुष्याः'[४६]

सप्तमो मन्त्रः –

आसीनारयसो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत दहोर्जंदधात।।[४७]

हे दिव्य ज्योतिषमद्भ्य देवभ्यः साकं यज्ञीयवेद्यामुविष्टाः पितृगणाः यूयं हविर्दत्तवते यजमानाय धनं दत्त। यजमानस्य संततिभ्यश्च धनं यच्छत। उपर्युक्तगुणयुताः यज्ञकर्मणि ऊर्जं धनं च प्रयच्छत।

अरुणीनामित्यत्र उव्वटाचार्यस्य भाष्यं द्रष्टव्यं भवति तद्यथा–

अरुणीनां अरुणवर्णानां अरुणवर्णास्ता ऊर्णाः भवन्ति याभिः कुतपाः क्रियन्ते। कुतपप्रियाश्च पितरः कुतपं चासने दद्यात्।[४८] कुतप इति सामान्ये लोके कञ्चुकी (कुर्ता) पदेन उच्यते, रयिशब्दः वस्वशब्दश्च उभावपि धनपर्यायौ।

अष्टमो मन्त्रः –

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु।।[४९]

ये अस्माकं सौम्यस्वभाववन्तः धनवन्तः आढ्याः पितरः वसिष्ठगोत्रोत्पन्नाः वस्त्रादिभिरलंकृतशरीराः देवेभ्यः पितृभ्यश्च सोमसम्पादनं चक्रुः ते प्राचीनाः पितरः सोमपानकाले ऊचुः अयं यमः पितृणामधिपतिः पितृभिःसाकं मैत्रीभावं कर्तुमभिलषति। पितृभिः साकं मैत्री सम्पाद्य यमः स्वेच्छया यथाभागं हविर्ग्रहणं करोतु। यथाकामं चहविः अत्तु।

मन्त्रे वसिष्ठ शब्दः विशिष्टार्थवाचकः। यद्यपि वेदे वसिष्ठनामक ऋषिः श्रूयते, परन्तु अत्र पितृणां विशेषणम्। वस् आच्छादने धातोः सकाशात् इष्ठन् प्रत्ययेन वसिष्ठः सिद्ध्यति। वसिष्ठस्य बहून्यपत्यानि। वसिष्ठः पुनर्वस्तृतमः कृतास्पदो वसति[५०] 'वसिष्ठाः वसिष्ठस्य गोत्रापत्यानि'[५१]

'As one of the group of ancient seers'[५२] अनूहिरे–देवान् प्रापितवन्तः। अनु वहन्ति स्म देवान् प्रापितवन्तः'[५३]

नवमो मन्त्रः –

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।[५४]
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।।

हे अग्ने क्रमेण प्रयत्नेन देवान् प्रति गन्तारः देवत्वं च प्राप्ताः स्तुतिभिः ये यज्ञान् सम्पादयन्ति तान् सर्वान् श्रेष्ठज्ञानसम्पन्नान् सत्यसत्यवक्तृन पितॄन् कव्यप्रियान् अस्माकं सम्मुखमानय। अयं भावक्रमेण देवभावप्रापकः यज्ञविद्यां होत्रविद्यां च जानानः स्तुतिभिर्जनानां मनसि यज्ञानुष्ठानाय रुचेरुत्पादकः स्तोत्राणां सम्पादकः श्रेष्ठप्रज्ञानयुतःज्ञानेन सम्पन्नः पितृभिः साकं सम्मुखो भव।

जेहमाना – जेह प्रयत्ने गतौ च शानच् प्रत्ययः। क्रमेण देवत्वं प्राप्ताः इत्यर्थः।[५५]

होत्राविदः–यज्ञान् सम्यक् कर्तुं वेदितारः।[५६]

"Who know the sacrifice"[५७]

धर्मसद्भिः–यज्ञसादिभिःहविः।[५८]

Who dwell in glowing right[५९]

दशमो मन्त्रः –

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः।
आग्ने याहि सहस्त्रं देववृन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसदिभ्ः।।[६०]

असमर्थाः सत्यप्रतिपादकाः सत्यवक्तारः हविषो भक्षकाः हविषां रक्षकाः देवराजेनेन्द्रेण साकं अन्यैश्च देवैःसह रथारूढाः सन्तः गमनकर्तारः ये पितरः सन्ति, हे अग्ने, त्वं अपरिमिताभिः स्तुतिभिः प्राक्कालीनैः पूर्वजैः सह ये यजमानात् पूर्वमेवोत्पन्नाः पितृत्वं गताः ये च नूतनाः यजमानेन सह उत्पन्नाः अनन्तरं च जाताः किन्तु अल्पायुष्यात् दिवंगताः पितृत्वं च लब्धाः तैः सर्वैः पितृभिः सह सम्मुखो भव।

एकादशो मन्त्रः –

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवींषि प्रचितानि बर्हिष्यथ रयिं सर्ववीरं दधातन।।[६१]

अग्निष्वात्ताः पितरः एतन्नामधेयाः पितरः यूयं अस्मिन् पितृकर्मणि पितृयज्ञे आगच्छत आयात तथा आगत्य च यथोचिते स्थाने सादिते कुशासने सुखेन उपविशत। पितृणां सुखासनं कुश एव भवति। कुशेषु उपविशन्ति, कुशेषु स्थापितानि हवींषि च अत्त भक्षयत खादत। अनन्तरं यजमानाय धनं वीरसन्ततिञ्च प्रयच्छत।

अग्निष्वात्ताः – येषां श्मशानक्रिया सम्पन्ना। दाहभावं प्राप्ताः पितरः। अग्निना आस्वादिताः।[६२]

Whom Agni's flames have been tested whose body have been burnt.[६३]

प्रयतानि – नियमपूर्वकं स्थापितानि[६४]

व्यपगतरागद्वेषमोहैरभिसंस्कृतानि शुचीनि[६५]

द्वादशो मन्त्रः –

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाढव्यानि सुरभीणि कृत्वी।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि[६६]

अत्र मन्त्रे जातवेदः अग्नेः विशेषणं सम्बोधनपदम्।

जातमात्रः चः स्वप्रकाशेन अचिन्त्यैश्वर्येण च निखिलं जगत् वेदसे जातवेदाः तत्संबोधनेन जातवेदः हे अग्ने त्वं अस्माकं स्तुतिं मन्त्रपाठं च अंगीकृत्य अस्मदीयानि हवींषि सुरभीणि सुगन्धितानि सुवासितानि कृत्वा विधियुतं वहनं कृतवानसि तथा पितृभ्यः प्रदत्तवान् ते पितरश्च स्वधाकारेण प्रदत्तं हविः भक्षणं चक्रुः तस्मात् हेदेव त्वमपि अस्मत्प्रदतानि हवींषि भक्षय। अवाट् इत्यत्र वड् प्रापणे धातोः लङ्लकारे मध्यमपुरुषैकवचने छान्दसत्वात् रूपम्।

त्रयोदशो मन्त्रः –

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँश्च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व।[६७]

अयं भावः पितृगणेषु केचन अस्माकं समीपे वसन्ति केचन दूरे वसन्ति। यान् पितॄन् अहं विद्म जानामि समीपत्वात यान् च न जानामि विप्रकृष्टत्वात् अति दूरत्वात् तान् सवीनपि हे अग्ने त्वं जानासि। अयमर्थः ये सूक्ष्मरूपधृताः सन्ति तान् वयं प्रयोगकर्तारो न जानीमः ये च स्थूलरूपधृताः तान् वयमनुष्ठातारो जानीमः परन्तु जातवेदसो विशेषणेन विशिष्टोऽयं भगवान् अग्निः सर्वान् दिव्यज्ञामयत्वात् जानाति तस्मात् हे अग्ने पितृयज्ञाख्यं

कर्म त्वं जुषस्व सेवस्व। अथवा ये अस्मद्वंशजाः पितामहेभ्यः प्राक्तनाः प्राचीनाः पितृत्वं प्राप्ताः उत वा गर्भस्रवादिभिः मृताः पितृत्वं च गताः तान् वयं न जानीमः, परन्तु अग्निः तथाविधान् सर्वान् जानाति। अतो हेतोः तेषां उपकाराय प्रीतये अस्मत्प्रदत्तं हविः सेवस्व।

चतुर्दशःमन्त्रः –

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवं स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्त्राडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व।

अयमर्थः ये पितरः अग्निना दग्धाः श्मशानक्रियासम्पन्नाः अस्माकं शरीरं प्राप्ताः ये च श्मशानक्रियाहीनाः भूमौ गर्ते सृताः अथवा महानद्यादौ प्रवाहिताः ये अग्निदाहेनाधिकृताः अथवा हिंसकप्राणिभिः भक्षिताः तथाविधाः उभयप्रकारकाः पितरः स्ववंशजैः प्रदत्तानि हवींषि भक्षणाय अन्तरिक्षे उपस्थिताः भवन्ति तथा च हवींषि स्वधाकारेण दत्तानि गृहीत्वा तृप्ताः आनन्दमग्नाश्च जायन्ते। हवींषि भुक्त्वा मोदन्ते सर्वे। हे अग्ने प्राणैः सह सूक्ष्मशरीराणां नेतारं यथाकामं कर्मानुसारं कर्मफलभोगाय स्वर्गतिं प्राप्तये कल्पयस्व समर्थयस्व। अयं भावः मृते सति अयं देदीप्यमानः अग्निदेवः मृतकस्य प्राणान् कार्मिकं शरीरं चादाय कर्मफलभोगाय सामर्थ्यमुत्पादयति। अस्मिन् जगति यावन्तः शरीरधारिणः सूक्ष्माः स्थूलाश्च दृश्यन्ते ते सर्वे नैजं कर्मफलं भुञ्जेरन्। कर्मणा शरीरस्य शोभनत्वं अशोभनत्वं चाकलितम्। कर्मणा धनाढ्यः निर्धनश्च। कर्मणा सकलाङ्ग विकलाङ्ग च जायते। किं बहुना अस्य संसारस्यापरं नाम कर्मक्षेत्रमस्ति विशिष्य भारतभूमिः कर्मभूरिति।[६९]

असुनीतिः – एतन्नामकः देवः अन्तरिक्षस्थाने निरुक्ते पठितः। असून् प्राणान् नीत्वा गच्छति।

तथा च गारुडे –

अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येंप्यदग्धा कुले मम। ते पिबन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडितोदकम्।।[७०]

पितृणामुत्पत्तिविषये सामान्येन जिज्ञासा भवति वयं जानीमः अस्मद्वंशजाः दिवंगताः एव पितरो भवन्ति। परन्तु धर्मशास्त्रेऽस्य रहस्यमुद्घाटितम्। मनुस्मृतौ प्रथमेऽध्याये प्रोक्तम्–

यक्षरक्षःपिशाचाँश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान्।
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितृणाञ्च पृथग्गणान्।।

तत्रैव तृतीयाध्याये मनोः ये मरीच्यादयः पुत्राः प्रोक्ताः, तेषां पुत्राः पितर' इति समाख्याताः यथा–

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः।।[७२]

अनन्तरं केषां के पितरः सन्ति सर्वमिदं विस्तेरण प्रपञ्चितम्–

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः।
अग्ष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः।।

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सुपर्णकिन्नराणाञ्च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः।।

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणाञ्च सुकालिनः।।

सोमपास्तु कवेः पुत्राः हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः।।

अग्निदग्धानग्निदग्धा काव्यान् बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्ताँश्च सौम्याँश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्।।[७३]

इदानीं प्रश्न उदेति कथं इमे तृप्ताः जायन्ते, क उपायः करणीयः। केषाञ्चित् आहुतिभिः अपरेषां स्तुतिभिः अन्ये पिण्डदानेन केचन ब्राह्मणभोजनेन, उक्तञ्च–

अग्निष्वात्ता हुतैस्तृप्ताः सोमपाः स्तुतिभिस्तथा।
पिण्डैर्बर्हिषदः प्रीताः प्रेतास्तु द्विजभोजने।।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः।
देवभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः।।[७४]

अस्य शोधालेखस्य सारः वर्तते पितृकर्म सर्वैः निश्चितमनुष्ठेयम्। यतो हि वयं पितृभ्य उत्पन्नाः पारिमताश्च। देवकार्यं समाप्य पितृकर्म पुनश्च देवकार्यं साधयेत् यथा चाह –

देवकार्याद् द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते।
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।।[७५]

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः।

श्रौतसाधकाय अमावास्यायामेव पिण्डपितृयज्ञःविधीयते । सोमो राजा यः नभसि दृश्यते स देवानामन्नम् उक्त च 'यमादित्या अंशुमाप्याययन्ति'[७६] तथा अमायां रात्रौ स राजमानश्चन्द्रः क्षीयते, अतः क्षीणे काले पितृभ्यो द्रव्यं दद्यात् अनेन क्रमेण पितृभ्यो देवैः साकं कलहस्य निवारणं भवति उक्तञ्च शतपथे–

तस्मिन्क्षीणे ददाति तथेभ्यौऽसमदं करोत्यथ यदक्षीणे दद्यात् समदं ह कुर्यात्[७७]

तत्रैव पूर्वाह्ण – मध्याह्ण – अपराह्णेषु कः कालः कस्य कृते प्रशस्तः इति मीमांसितः–

''स वा अपराह्णे ददाति। पूर्वाह्णे वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्णः पितृणां तस्मादपराह्णे ददाति।''[७८] पिण्डदानानन्तरं ''अत्र पितरो मादयध्वं इति मन्त्रं जपति। अनन्तरं पराङ्मुखः सन् पिण्डाभिमुख्यं विहाय पर्यावर्तेत। यथा कर्ता एकस्य मुहूर्तस्य कृते पिण्डं न पश्येत् यतो हि पितरः मनुष्येभ्यः तिरोभूताः अन्तर्धानशक्तियोगात्। अतः पितृणां तिरोधानेन भवितव्यम्। यथा चाह शातपथी श्रुतिः ''अथ पराङ् पर्यावर्तते। तिर इव वै पितरो मनुष्यभ्यः तिर इवैतद् भवति स वा आत्तमितोरासीदित्याहुरेतावान् चासुरिति स वै मुहूर्तमेवासित्वा।।[७९]

१ षड्गुरुशिष्य सर्वानुक्रमणी
२ मीमांसासूत्रम्
३ बृहद्देवता
४ कर्कभाष्यम्
५ गरुडपुराणाम्
६ पाणिनीयाष्टाध्यायी
७ निरुक्तम्
८ निरुक्तम्
९ निरुक्तम्
१० ऋग्वेदसंहिता–१०.१५.०१
११ सायणभाष्यम
१२ वेंकटभाष्यम्
१३ Mison
१४ Maxmuller
१५ Meedonell
१६ Griffith
१७ Meedonell
१८ Griffith
१९ वेंकटमाधवः
२० Mecdonell
२१ Maxmuller
२२ ज्योतिषशास्त्रम्
२३ ऋग्वेद–१०.१५.२
२४ गरुडपुराणाम्

२५ ऋग्वेद–१०.१५.३
२६ वेंकटमाधवटीकायाम्
२७ शतपथब्राह्मणम्
२८ निघण्टौ
२९ मोनियर विलियम
३० Machdonell
३१ Griffith
३२ ऋग्वेद–१०.१५.४
३३ कात्यायन श्रौतिसूत्रम्
३४ तैत्तिरीयब्राह्मणम् – १.६.९
३५ सायणभाष्यम्
३६ New Vedic Selection Part II
३७ Macdonell
३८ Wilson
३९ Wilson
४० ऋग्वेद – १०.१५.५
४१ गरुडपुराणम् प्रेतखण्डः
४२ ऋग्वेद – १०.१५.६
४३ शत. ब्रा. – २.४.२.२
४४. उव्वटाचार्यः
४५. अष्टाध्यायी
४६ शत. ब्रा.
४७ ऋग्वेद – १०.१५.७
४८ शुक्लयजुर्वेद महीधर–१९/६३
४९ ऋग्वेद – १०.१५.८
५० शुक्लयजुर्वेदभाष्ये – उव्वटः
५१ शुक्लयजुर्वेदभाष्ये–महीघरः
५२ Macdonell
५३ शुक्लयजुर्वेदभाष्ये – महीघरः
५४ ऋग्वेद – १०.१५.९
५५ सायणाचार्यः
५६ सायणाचार्यः तत्रैव भाष्ये
५७ Maxmuller
५८ सायणः तत्रैव
५९ Griffith
६० ऋग्वेदः – १०.१५.५०
६१ तत्रैव – १०.१५.११
६२ शु.यजु. १९/६० महीधरः
६३ Griffith
६४ महीधर यजुर्वेदः
६५ उव्वटः यजुर्वेद
६६ ऋग्वेद – १०.१५.१२
६७ ऋग्वेदः – तत्रैव १३
६८ ऋग्वेदः तत्रैव – १०.१५.१४
६९ निरुक्तम् दैवतकाण्डम्
७० गरुडपुराणम् प्रेतखण्डः
७१ मनुस्मृतिः–१.३७
७२ मनुस्मृतिः–३.१९४
७३ मनुस्मृतिः–तत्रैव
७४ मनुस्मृति कुल्लूकभट्टस्य टीका तृतीयेऽध्याये
७५ मनुस्मृतिः–३.३०३
७६ तै.सं. २.४.१४.२
७७ शत.ब्रा. २.३.४.७
७८ तत्रैव
७९ शत ब्रा. २.३.४.२१

विवेकी राय के उपन्यासों में आंचलिकता

डॉ. दीपिका विजयवर्गीय
सह आचार्य
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

ग्रामीण परिवेश में भाषा का सरल, सहज और स्पष्ट उपयोग होता है। हर गाँव की जनता वहाँ की क्षेत्रीय भाषा से प्रभावित होती है और ग्रामीण, आँचलिकता की बोली से ढली होती है। क्षेत्रीय परिवेश के अनुसार रीति-रिवाजों, खान-पान एवं वेशभूषा की भी विविधता देखने को मिलती है। हर गाँव के परिवेश के अनुसार उनकी वेशभूषा उनकी पारम्परिकता पर निर्भर होती है। ग्रामीण जीवन में लोग अपने मन की बातें आपस में करते हैं और अभाव में भी खुश रहते हैं। उनको नगरों की चकाचौंध से दूर शान्त वातावरण में ही आनन्द आता है। यद्यपि आज के दौर में ग्रामीण परिवेश में भी आधुनिकता ने पैर पसार लिए हैं, किन्तु इसके बावजूद ग्रामीण परिवेश का अपना अस्तित्व है, जिसको बनाने में किसान वर्ग का बहुत महत्व है। आज के दौर में ग्रामीण परिवेश में अनेक अभाव होने पर भी उनको भौतिक सुखों की कोई ज्यादा परवाह नहीं होती। उनका स्वभाव उनकी संस्कृति और उनके समाज में समाया हुआ है। आज के समय में ग्रामीण परिवेश का अस्तित्व बचाने में किसानों और सरकारी सुविधाओं का बहुत योगदान है। ग्रामीण परिवेश में सभी के सुख-दुख साझा होते हैं।

ग्रामीण जीवन 'ग्रामीण परिवेश' से तात्पर्य है-सादा जीवन । बिना बनावट का जीवन । आज हम इक्कीसवीं सदी में आ चुके हैं, हम अनुभव करते हैं कि शहरों के बनावटी जीवन से जब थक जाते हैं, तो शांतिमय वातावरण की आवश्यकता होती है। उस समय हमें गाँवों की ही याद आती है। गाँव का जीवन शांत वातावरण से भरा होता है। हरियाली चारों तरफ, हवा में सोंधी-सोंधी खुशबू और पक्षियों की चहचहाहट । उस वातावरण में जैसे जीवन के सभी सुख विद्यमान हों।

कथाकार शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है-क्षेत्र या अँचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएं,

उत्सव, आदर्श और आस्थाएं, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हों, कि उनके आधार पर वह क्षेत्र या अँचल-विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हों।

ग्रामीण लोगों का सरल स्वभाव, सरस जीवन होता है। खेतों में खेती करते किसान और औरतें अपनी दिनचर्या में व्यस्त दिखाई देते हैं। पशुपालन गाँव का मुख्य व्यवसाय होता है। अपने घरों के बड़े आँगन में पशुओं का रहने का स्थान होता है। मुर्गी, बकरी, गाय-भैंस का पालन-पोषण वे अपने अपनत्व के साथ करते हैं। खेतों में अपनी फसल के साथ मेहनत करके अपना पालन-पोषण करते हैं। वहाँ सभी किसान नज़र आते हैं। 'गाँव में सभी के बड़े निर्णय, पंचायत पर निर्भर होते हैं। गाँव के सभी मसले पंचायत के द्वारा निपटाये जाते हैं। लोगों का विश्वास अब भी अपनी पंचायत पर बना हुआ है। उसी के फैसले को आखिरी फैसला मानते हैं। गाँव में सभी के निर्णय पंचायत पर निर्भर होते हैं। प्राय: सभी मसले पंचायत के द्वारा निपटाये जाते हैं। लोगों का विश्वास अब भी अपनी पंचायत पर बना हुआ है। उसी के फैसले को आखिरी फैसला मानते हैं।

'सोनामाटी' उपन्यास में आँचलिकता

ग्राम्यजीवन के समर्पित कथाकार डॉ. विवेकी राय की उपन्यास यात्रा का प्रारंभ 1867 ई. में प्रकाशित 'बबूल' से हुआ। उनके छह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'सोनामाटी' जो 1883 ई. में प्रकाशित हुआ, अपने गहन चिन्तन एवं व्यापक दृष्टिकोण के कारण महाकवित्व सदृश गरिमा को प्राप्त हुआ है। इसे उक्त वर्ष की श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति मान कर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने डॉ. विवेकी राय को 'प्रेमचन्द पुरस्कार' से सम्मानित किया। 'सोनामाटी' में समकालीन जीवनसंघर्ष का व्यापक और गंभीर चित्रण है। ऐसा नहीं, कि इसका आकार विस्तृत है, वास्तव में विस्तृत इसकी कथानकीय पृष्ठभूमि है। 'सोनामाटी' विवेकी राय की एक प्रौढ़ रचना है। 65 अध्यायों और 464 पृष्ठों में इस बृहत् उपन्यास में वर्तमान ग्राम्य जीवन के विविध सन्दर्भों को उजागर किया गया है। 'सोनामाटी' में 'करइल' अंचल इसके केन्द्र में है।

गाजीपुर-बलिया के संधिस्थल पर स्थित 'करइल' लगभग चालीस-पचास किलोमीटर के वृत्त में फैला अंचल हैं। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि इसका भूगोल, अर्थात् करइल-अँचल सत्य है तथा इतिहास, अर्थात् इसमें आये पात्रों एवं स्थानों के नाम कल्पित हैं। स्पष्ट है कि कृषिभूमि करइल को लेखक ने पृष्ठभूमि बनाया है, अत: कृषक-जीवन ही इसका केन्द्रीभूत विषय है, जिसके चारों ओर संघर्षों और द्वन्द्वों का जाल

बिछा हुआ है। इस दृष्टि से इसे 'आंचलिक बृहत्कथा' कहा जाना अनुचित नहीं होगा। कृति में वर्णित प्रमुख संघर्ष किसान (उत्पादक-वर्ग) और अध्यापक (मध्यबुद्धिजीवी) वर्ग का है। इसी के इर्द-गिर्द दो विचारधाराओं का संघर्ष, दो भूतपूर्व जमींदारों और दो गाँवों का संघर्ष, नये-पुराने मूल्यों तथा सड़क-निर्माण से सम्बद्ध रचनात्मक और विध्वंसक दृष्टियों का संघर्ष, पिता-पुत्र एवं ससुर-दामाद जैसे सम्बन्धों का संघर्ष, गाँव की राजनीति से प्रभावित वैयक्तिक टकरावों के ऐसे विविधवर्णी ग्रामभित्तीय चित्रों से उपन्यास समृद्ध है। इस प्रकार 'गोदान' और 'मैला आँचल' की कड़ी को पूरा करने वाली कृति 'सोनामाटी' इस युग की एक उत्कृष्ट औपन्यासिक उपलब्धि के रूप में उभरी।

इस उपन्यास को आँचलिकता प्रदान करने में प्राकृतिक परिवेश का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चालीस-पचास किलोमीटर के वृत्त में फैले बाढ़ग्रस्त करइल के मैदान के चप्पे-चप्पे से लेखक परिचय कराता है। इस क्षेत्र की माटी, कृषि, अनाज, हरियाली, कीचड़, अगहनी सुंदरता, खेल-खलिहान आदि को लेखक ने बारीकी से अंकित किया है। लेखक उपजाऊ करइल के मैदान का मूर्त रूप उपस्थापित करता है। यह करइल तो स्वर्ण-भूमि है, भूमियों का राजा । सुजला सुफला सस्यश्यामला अन्नब्रह्म की साकार धरती। अलंकार रूप में ही नहीं, यहाँ की माटी सचमुच सोना है। बिना खाद-पानी के, कम-से-कम श्रम में उत्तमोत्तम फसल लहलहाती है, तो माघ-फागुन में इस रास्ते से निकलने वाले दूर-दराज के यात्री सिहर उठते हैं। बाद में, बरसात के दिनों में यह पूरा क्षेत्र समुद्र बन जाता है।

सोनामाटी कीचड़ के रूप में नारकीयता प्रदान करती है। रास्ते से चलना तक दूभर हो जाता है। नौका ही यातायात का साधन बनती है। कृषि तो दूर, जीवन ही एक समस्या बन जाता है। परिणामस्वरूप करइल जैसा विस्तृत क्षेत्र बाढ़-बरसात में सभ्य संसार से पृथक् होकर ईश्वर और भाग्य के नाम पर जीता-मरता रहता है। प्राकृतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में कृषि दशा, बाढ़, यातायात की असुविधा, अभाव, संघर्षमय जीवन, दुर्दम्य जिजीविषा, पृथक् जीवनशैली आदि का अंकन हुआ है। इसी विस्तृत क्षेत्र का जीवन पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर है। वह उसे बनाती भी है और बिगाड़ भी देती है।

'समर शेष है' उपन्यास में आँचलिकता

विवेकी राय का नवीनतम उपन्यास 'समर शेष है' पढ़कर फैज काफका की यह उक्ति बरबस याद आती है

– 'यदि हम कोई पुस्तक पढ़ते हैं और वह हमारे मस्तिष्क पर हथौड़ियों की चोट से हमें जागृत नहीं कर देती तो हम उसे क्यों पढ़ें ?...पुस्तक तो बर्फ तोड़ने की कुल्हाड़ी की भाँति होनी चाहिए, जो हमारे अन्तर्मन के हिमसागर को टुकड़े-टुकड़े कर दे।' यह मापदण्ड सभी पुस्तकों के मूल्यांकन के लिये नहीं अपनाया जा सकता, परन्तु विवेकी राय का प्रासंगिक उपन्यास इस मापदण्ड पर भी उत्कृष्ट प्रमाणित होता है। यह उपन्यास सत्तर के दशक में हुई असफल 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। विवेकी राय की गणना आधुनिक हिन्दी साहित्य के शिखर पुरुषों में होती है। हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है। आधे दर्जन उपन्यासों और लगभग उतने ही कहानी-संग्रहों के रचनाकार विवेकी राय का लगभग चार दशकों से हिन्दी साहित्य में अन्यतम स्थान रहा है। परम्परा की दृष्टि से डॉ. राय प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकार हैं।

'लोकऋण' उपन्यास में आँचलिकता

'लोकऋण' उपन्यास विवेकी राय द्वारा लिखित तीसरा उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ। उत्तरप्रदेश के गाँव रामपुर की व्यथा-कथा और ग्रामचेतना का आंचलिक उपन्यास में गाँव के अनुभव यात्रा के प्रति एक नया रुझान, एक नयी मानसिकता उत्पन्न करने की कोशिश कर गाँव की पीढ़ी-लिखी पीढ़ी को लोकऋण से ऋण और ग्रामचेतना की महत्वपूर्ण बात है। इस उपन्यास में गाँव की विकृतियों और बिगड़ते माहौल को देख कर डॉ. विवेकी राय ने गांव से निराश होकर उसे विकास की ओर ले जाने का पूरा प्रयत्न किया है। उन्होंने ग्राम-जीवन की एक विडंबना गाँव की बदली जिंदगी, पढ़ी-लिखी पीढ़ी के दायित्व और सरकारी राजनीति के दाव-पेंच, आम आदमी की परेशानियों और समृद्ध वर्ग में पनपती व्यावसायिक वृत्ति के मद्देनजर बदलते समय के सामने उनका सामना एवं विरोध करके जाग्रति का सन्देश देकर ग्रामचेतना को उत्प्रेरित करने का प्रयत्न किया है।

'लोकऋण' उपन्यास में पात्रों की बहुलता है, जिसमें त्रिभुवन का पूरे परिवार का वर्चस्व चित्रित है। त्रिभुवन और उनके भाई धरमू को गांधीवादी नेता के रूप में बताया गया है। गांधी के समय उन्होंने आजादी की जंग में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गिरीश, त्रिभुवन का छोटा भाई है, जो राजनीतिक रूप से भ्रष्टाचारी के रूप में है। वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी का विभागाध्यक्ष है। वह अपने स्वार्थों के लिए ग्रामचेतना को दबोचता है, और त्रिभुवन गाँव का सभापति बन कर गाँव का निर्माण नहीं होने देता। वह राजनीतिक-

अव्यवस्था, बेईमानी और व्यावसायिक वृत्ति के द्वारा शैक्षणिक चेतना को समाप्त करने को बावरा हो जाता है। पुस्तकों की चोरी, नाटक आयोजन, सीताराम से जुड़कर थाणा केवल्टी प्रसंग, सभापति का चुनाव आदि के माध्यम से ग्रामचेतना को टटोलने और गाँव की बनती-बिगड़ती जिन्दगी को जागृत करने का प्रयत्न 'लोकऋण' में किया गया है। जिसका ग्रामीणों की धार्मिक भावना पर गहरा प्रभाव लक्षित होता है।

ग्रामीण जीवन ग्रामीण जीवन में विभिन्न मान्यताएँ देखने को मिलती हैं। आज का युग तकनीक का युग है। आज ग्रामीण लोग शहरों की ओर उन्मुख हैं, फिर भी आज ऐसे कई गाँव हैं जहाँ अंधविश्वास, भूत-प्रेत मानना, जातिभेद रखना, ऐसी कई मान्यताएँ ग्रामीण जन-जीवन में देखने को हमें मिलती हैं। विवेकी राय के उपन्यासों में भी ऐसी कई मान्यताएँ हमारे सामने उभर कर आती हैं। ये मान्यताएँ निम्नांकित हैं

अंधविश्वास

भारतीय समाज में और धर्म व्यवस्था में कुछ विश्वासों, श्रद्धा और मान्यताओं को स्वीकार किया गया है। ग्रामांचलिक जन-जीवन में शकुन-अपशकुन की धारणा, भूत-प्रेतों को मानना, देवता का शरीर में संचार होना, वर्षा होने के लिए और अच्छी फसल पाने के लिए कुछ रोचक उपाय करना जैसे:- महादेव को पानी में डुबोना, गधे के कान में तेल डालना, मनौतियाँ माँगना, भविष्य देखना, मंत्र-तंत्र, दान-पुण्य, पूजा-पाठ में विश्वास करना, पिंडदान के लिए पुत्र का अनिवार्य मानना आदि अंधविश्वासों को विवेकी राय के उपन्यास, कहानी और निबंध कृतियों में बारीकी से देखा जा सकता है। 'लोकऋण' (1977) में ग्रामांचलिक जीवन में स्थित किसी पीरबाबा या देवता के नाम से ताबीज बाँधने से सुख-शांति मिलती है, इस धारणा को दर्शाया गया है।

गांधीवादी धरमू बितनी की आसक्ति से बेचैन हो जाने पर पीर बाबा का ताबीज दाहिनी भुजा पर बाँध कर पाँच बार मंत्र जपता है और मन:शांति प्राप्त करना चाहता है, परंतु कुछ असर न होने पर उसे महात्मा गांधी जी की सलाह याद आती है और वह ताबीज को अंधविश्वास मानकर फेंक देता है। संततिसंबंधी ग्रामांचलों में अनेक धारणाएँ रही हैं। संतान होने पर ही दाम्पत्य सार्थक है, पुत्र वंश का दीपक है, मरणासन्न के मुँह में गंगाजल डालने के लिए पुत्र की आवश्यकता है, पुत्र के बिना पिंडदान हो नहीं सकता, मृतक के अग्निसंस्कार के लिए पुत्र की आवश्यकता है, आदि अंधविश्वासजन्य धारणाओं के कारण पुत्रप्राप्ति के लिए व्रत-उपवास किए जाते हैं, मनौतियाँ माँगी जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास का धरमू और उसकी पत्नी बड़की संतति प्राप्त होने के लिए व्रत-उपवास करते हैं।

'सोनामाटी' (1983) में करइल क्षेत्र में सरोहि के बाजार से खाली हाथ आना अशुभ समझा जाता है। इस संबंध में रामरूप का कहना है-'सरोहि से खाली हाथ नहीं लौटना चाहिए। बाजार से बिना सौदा और जलाशय से खाली बर्तन लिए लौटना जैसे अशुभ है।''समरशेष है-(1988) ग्रामांचलिक जन-जीवन में स्थित छोटे-छोटे प्रसंगों में भविष्य देखना, ज्योतिषियों की सलाह लेना, साधु महाराज की शरण जाना आदि प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं। इस उपन्यास के असवलिया गाँव के सभापति सुखदेव सिंह का उदण्ड पुत्र दीपक उसी गाँव की एक विधवा मजदूरिन सगुनबो का बकरा चुराता है। इससे निराश होकर सगुनबो बीच माझा गाँव के रसगुल्ला बाबा की शरण लेती है, सिर पटक कर बकरे की चोरी की घटना वर्णित करती है। इस पर रसगुल्ला बाबा कहते हैं-'जा तेरा बकरा वह बाँ-बाँ बोल कर दे देगा। यह अक्षत उसके घर पर छिड़क देना।' इसी के परिणामस्वरूप दीपक को तेज बुखार आता है, उसके सपने में बकरा उसे मार देता है और वह भयभीत होकर सगुनबो का बकरा वापस कर देता है और माफी माँगता है। ग्रामांचलिक जीवन में ऐसी अनेक अंधविश्वासजन्य मान्यताएँ रही हैं जिन्हें ग्रामजीवन में अशुभ माना जाता है।

ज्योतिष-भविष्य

ग्रामांचलिक जन-जीवन में आमतौर से भविष्य और ज्योतिष पर विश्वास रहता है। किसी भी शुभ कार्य के लिए मुहूर्त निकालना या किसी ज्योतिषी के पास जाकर शुभ कार्य के लिए जानकारी हासिल करना, प्रस्थान आदि के लिए शुभ समय देखने की प्रवृत्ति रही है। इस प्रवृत्ति का चित्रण विवेकी राय ने विवेच्य साहित्य में किया है।'सोनामाटी में ग्रामांचलिक जन-जीवन में छोटे-बड़े काम के पूर्व ज्योतिष देखने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। हनुमान प्रसाद के घर से कोइली नामक स्त्री भाग जाती है, जिससे हनुमान प्रसाद विवाह करना चाहते थे। उसे खोजने के लिए वे बेचैन हो जाते हैं। इस स्थिति पर बत्तीसा नामक नौकर छातापुर के सोखा नामक ज्योतिषी से कोइली किसके साथ भाग गयी है, किस दिशा में गयी है, यह देखने की सूचना करते हुए कहता है-'चलकर छातापुर के सोखा से नाम निकलवाया जाय ।कौन भगाया है ? कहाँ है ? वह पैसा ठांठ लेता है तब एक नाम देता है। लेकिन अव्वल दर्जे का नामकढ़वा है।' उनकी धारणा है कि ज्योतिष के आधार पर ही काम की सफलता निर्भर होती है। मनौतियाँ इच्छित कार्य पूरा होने के हेतु आपत्तियों से छुटकारा पाने हेतु एवं फलप्राप्ति हेतु देवी-देवता, पीर बाबा या किसी संत महात्मा से मनौती माँगने की भावना ग्रामवासियों में रहती है।

'सोनामाटी' में हनुमान प्रसाद को चोरी के संदर्भ में जेल जाना पड़ता है, जेल के कष्टमय जीवन से छुटकारा पाने हेतु वे करहिया गाँव की कमच्छा देवी से मनौती माँगते हैं, कि जेल से छूटने के बाद होम-हवन करेंगे। संकटमोचन के बाद मनौती का कार्य पूरा करने की प्रवृत्ति भी इसलिए रहती है, कि यदि इसकी पूर्ति नहीं होगी तो गंभीर परिणामों को भोगना पड़ेगा। इसलिए हनुमान प्रसाद जेल से छूटने के बाद देवी के चबूतरे पर स्थित यज्ञशाला में पंडित की मदद से होम तथा अनुष्ठान करते हैं-'उन्हें एक रुपया थमाया और उन्होंने स्वयं घी देकर होम और संकल्पादि कार्य चटपट संपन्न कर दिया। भस्म का तिलक लगा के बाबू साहब ने देवी का दर्शन किया।'

'समरशेष है' में पंडित संतोषी मास्टर को परीक्षा-नकल विरोधी भाषण देते समय उदंड विद्यार्थियों द्वारा पीटा जाता है, इस घटना में उनका पैर टूट जाता है, प्लास्टर किया जाता है। यह पीड़ा शीघ्र दूर करने हेतु पंडिताइन को गाँव के लोग किसी देवी-देवता से मनौती माँगने की सलाह देते हैं-'किसी अपने देवता की मनौती कर दीजिए कि तीन महीने बाद जब प्लास्टर कटे तो हड्डी जुड़ी हुई मिले और पंडिताइन ने आँचल पसार कर रसगुल्ला को गहराया था। संकट-निवारण के बाद पंडिताइन पंडित को लेकर मनौती पूर्ति के लिए रसगुल्ला महाराज के आश्रम में जाती है।

इस तरह मनौतियों से संकट दूर करने में देवता की सहायता मिलती है, ऐसी भावना ग्रामाँचलिक जीवन में रही है, इसलिए श्रद्धा के साथ इनकी पूर्ति करना अपना कर्तव्य मानते हैं। मनौती माँगने से कार्य सफल हो जाता है, यह अंधविश्वासी विचार है। आज ग्रामाँचल में यह अंधविश्वासी रूप केवल अज्ञानियों एवं अशिक्षितों में ही है, ऐसा नहीं है, शिक्षितों में भी यह विचार प्रबल हो रहा है, इसका अच्छा उदाहरण पंडित संतोषी का परिवार रहा है। विवेकी राय के विवेच्य साहित्य में इस अंधविश्वासी रूप का यथार्थ चित्रण मिलता है।

सामाजिकता सामाजिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत ग्रामाँचलिक जन-जीवन में अंधविश्वास, ज्योतिष और भविष्य में विश्वास, मनौतियाँ, भूत-प्रेत, चुडैल, झाड़-फूँक, देवी-देवता के बारे में धारणा, जातिभेद आदि ग्रामीण मान्यताएँ देखने को मिलती हैं। ग्रामांचलिक जन-जीवन में स्थित ताबीज बाँधना, संतान प्राप्ति के लिए व्रत-मनौती माँगना, ज्योतिष विद्या में विश्वास करना, साइति देखना, भूत-प्रेत की छाया में विश्वास रखना, गुप्त धन संबंधी अनेक गलत मान्यताएँ प्रस्तुत करना, प्रसव के स्थल संबंधी धारणा को मन में बाँधना, ओझा पर विश्वास करना आदि का चित्रण 'बबूल', लोकऋण', 'सोनामाटी', 'मंगलभवन' में चित्रित हैं।

हिन्दी साहित्य में रोमन लिपि का प्रयोग

डॉ. वत्सला
सह-आचार्य (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

आज समाज में हिन्दी लिखने के लिए देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपना स्थान बनाती जा रही है। इस लेखन शैली से शनैः-शनैः देवनागरी लिपि के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न उपस्थित होने लगेगा। सम्प्रति इस प्रश्न पर विमर्श आवश्यक है। जब से भाषा बनीं तब से हर भाषा की अपनी लिपि है। सभी जानते हैं हिन्दी की लिपि देवनागरी है। इसे नागरी लिपि भी कहते हैं। यह लिपि सरल, सुन्दर, सुग्राह्य और सुपाठ्य भी है। पहले संस्कृत भाषा की लिपि ब्राह्मी थी, किन्तु कालांतर में देवनागरी ही संस्कृत भाषा की लिपि हो गई। देवनागरी लिपि हिन्दी के अलावा मराठी, कोंकणी, सिन्धी, भोजपुरी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, डोगरी, मागधी आदि भाषाओं की भी लिपि है। अंग्रेजी भाषा की लिपि रोमन है। रोमन लिपि में यूरोप की लगभग सभी भाषाएं लिखी जाती है जैसे - जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, इतालवी, डच, स्वीडिश, पुर्तगाली आदि। इन भाषाओं में अतिरिक्त चिह्न का प्रयोग किया जाता है किन्तु अंग्रेजों में किसी चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता है।

रोमन लिपि को अंग्रेजों ने अपनी भाषा लिखने के लिए लातिनी भाषा से लिया। यह लिपि अंग्रेजी भाषा की लिपि नहीं है। दोनों भाषाओं की लिपियों में पार्थक्य भी दृष्टिगत होता है। देवनागरी लिपि में स्वर और व्यंजन के बीच का स्पष्ट अंतर पाया जाता है, किन्तु रोमन लिपि में यह अंतर स्पष्ट नहीं हो पाता है। इसीलिए देवनागरी लिपि रोमन की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है। देवनागरी लिपि में लिखने व बोलने में समानता है किन्तु रोमन लिपि में ऐसा नहीं है। रोमन लिपि में लिखी जाने वाली अंग्रेजी भाषा के उच्चारण में बहुत अधिक असमानता पायी जाती है जैसे- उच्चारण वन (Van) होता है और लिखा one जाता है। रोमन लिपि में छब्बीस (26) वर्ण हैं जिसमें पाँच स्वर तथा इक्कीस (21) व्यंजन हैं। हिन्दी में उनचास (49) वर्ण थे पहले और बाद में आधुनिक हिन्दी में वर्णों की संख्या बावन (52) हो गई हैं जिनमें ग्यारह (11) स्वर है। देवनागरी में अनुस्वार (°), ह्रस्व, विसर्ग (:), अनुनासिक के लिए संकेत (चिह्न) हैं किन्तु रोमन लिपि में ऐसा नहीं है।

भाषा निर्धारित चिह्नों के प्रयोग से आपसी संवाद, अभिव्यक्ति सम्प्रेषण को सम्भव बनाती है। भाषा अभिव्यक्ति

का जीवनधायक तत्त्व है। ध्वनि से शब्दों का निर्माण होता है और लिपि, चिह्न की ऐसी व्यवस्था है जो ध्वनि का स्थान ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार लिपि से ही भाषा का मूर्त स्वरूप बनता है और वाचक को वाचन की व्यवस्था मिलती है। लिपि भाषा की अभिव्यक्ति का लिखित माध्यम है। भाषा की अक्षुण्णता के लिए लिपि अनिवार्य होती है। हमें यह ज्ञात है कि जिन भाषाओं की लिपि नहीं थी वे भाषाएं समाप्त हो गयी। लिपि के माध्यम से भाषा क अधिगम किया जाता है। छोटे शिशु को लिपि के माध्यम से ही भाषा का ज्ञान सिखाया जाता है।

हमारे देश में अंग्रेजी भाषा के आधिपत्य को स्थापित करना अंग्रेजों की सोची समझी योजना थीं। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में ब्रिटिशों का उपनिवेशवाद था। अंग्रजों ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए भारतीय शिक्षा पद्धति व संस्कृति पर प्रहार किया। उन्होंने हमारी शिक्षा व्यवस्था व संस्कृति को पिछड़ी व अनुपयोगी बनाने का प्रयास किया। उन्होंने ऐसी शिक्षा व्यवस्था व संस्कृति के निर्माण का प्रयास किया । जो हो तो भारतीय किन्तु मन- मस्तिष्क से अंग्रेजियत की भक्ति करने वाला हो। एतदर्थ 1835 में मैकाले ने संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी को राजभाषा पद पर स्थापित किया। मैकाले की शिक्षानीति का मुख्य उद्देश्य संस्कृत, पालि, प्राकृत व फारसी भाषा के वर्चस्व को तोड़ कर अंग्रेजी भाषा के आधिपत्य को स्थापित करना था। यद्यपि इसका प्रबल विरोध भी हुआ किन्तु मैकाले अपनी इस नीति में सफल हो गया। राजकाज की भाषा अंग्रेजी बना दी गयी।

अब अंग्रेजी को पढ़ना अंग्रेजी शासन की अनिवार्यता बन गयी। किन्तु भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेज चले गए किन्तु भारतीय जन मानस के सिर से अंग्रेजियत नहीं गयी। भारत में अंग्रेजी भाषा का जुनून लोगों के सिर पर आजतक चढ़ा हुआ है। स्थिति यह हुई कि अंग्रेजी पढ़ना आधुनिकता का पर्याय बन गया। दीर्घकालिक संघर्ष के बाद 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया गया। फिर भी आज भारत के हर गली-मोहल्ले में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय गाजर घास की तरह खुल गए हैं और हर व्यक्ति अपने बच्चे को अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में ही पढ़ाना चाहता है। इस अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खुलने और शिक्षा ग्रहण करने का परिणाम यह हुआ कि इन स्कूल के बच्चों को हिन्दी की गिनती व पहाड़ा न लिखने न पढ़ने आता है।

ये हिन्दी की मात्राओं का सही प्रयोग भी नहीं कर पाते हैं। इन अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययन करने वाले बच्चे का वाचिक स्तर हिंग्लिश हो गया हैं। अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी आज अंग्रेजी भाषा को व्याकरण की दृष्टि से न शुद्ध लिख पाते हैं, ना वे अंग्रेजी भाषा को अंग्रेजी लिखने के लिए प्रयुक्त करते हैं, बल्कि वे अंग्रेजी भाषा की रोमन लिपि का प्रयोग अंग्रेजी भाषा को लिखने के स्थान पर हिन्दी भाषा को लिखने में कर रहे हैं। यह प्रचलन दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है। आजकल के युवाओं में इसका चलन काफी बढ़ रहा है। महाविद्यालय,

विश्वविद्यालय व कारपोरेट सेक्टर में नौकरी करने वाले युवाओं में हिन्दी को रोमन लिपि में लिखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही हैं। आजकल फिल्मों व नाटकों के स्क्रिप्ट (कथानक), नेताओं के भाषण यथा - सोनिया व प्रियंका गांधी, उच्चाधिकारियों के सम्बोधन अभिभाषण आदि में लिखे जाने वाले वक्तव्य रोमन लिपि में लिखे जा रहे हैं। ऐसा प्रयोग आने वाले समय में देवनागरी लिपि के लिए खतरनाक संकेत है।

सोशल मीडिया (सामाजिक जनसंचार) के सभी माध्यम (पोर्टल, एप) पर यथा- वाट्स एप, फेसबुक, मैसेन्जर, इंस्टाग्राम, टेलीग्राम, ट्यूटर, ब्लाग आदि पर रोमन लिपि में हिन्दी लिखी जा रही है। मोबाइल पर सर्वाधिक रोमन लिपि में हिन्दी का प्रयोग हो रहा है यथा- 'बहुत ही शानदार' इस हिन्दी वाक्य को लोग रोमन में 'Bahut hi shandar' इस प्रकार से लिख रहे हैं।कम्प्यूटर, लैपटॉप, टेबलेट, मोबाइल के की-बोर्ड पर आज ऐसे एप, सॉफ्टवेयर की सुविधा उपलब्ध है कि यदि हम रोमन लिपि में हिन्दी लिख रहे हैं और उसको देवनागरी लिपि में लिखना चाहते हैं, तो बड़ी सहजता से उसका लिप्यन्तरण हो जाता है। इसी प्रकार यदि देवनागरी लिपि में हम लिख रहे है और उसका लिप्यन्तरण रोमन लिपि में करना चाहते हैं, तो वह बड़ी सुगमता से हो जाता है। कुछ लोगों का ऐसा कहना है कि जो लोग हिन्दी भाषा को देवनागरी लिपि में लिख व पढ नहीं सकते हैं, यदि वे रोमन लिपि में लिखी हिन्दी को पढ़ व समझ सकते हैं तो इस रोमन लिपि से हिन्दी का विस्तार होगा।

कुछ लोग ऐसा तर्क भी समुपस्थापित करते हैं कि रोमन में लिखने से हिन्दी आसान हो जाएगी और इसकी पकड़ अधिक लोगों तक हो जाएगी। जैसे यदि हम किसी ऐसे व्यक्ति से संवाद करते हैं, जिसे हिन्दी भाषा तो आती है लेकिन पढ़नी नहीं आती है, तो उससे रोमन लिपि द्वारा वार्ता किया जा सकता है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि कम्प्यूटर, इंटरनेट में रोमन लिपि में हिन्दी लिखने में आसानी होती है। देवनागरी लिपि में लिखने में समय अधिक लगता है। देवनागरी में टाइप करना कठिन भी है। किन्तु रोमन लिपि में मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट पर लिखना सरल है। इसलिए रोमन लिपि में हिन्दी लिखने से हिन्दी का प्रचार तेजी से होगा। लेकिन इस प्रयोग को बढ़ावा देने से इस परिवर्तन से कुछ दिनों में निजात पाना असम्भव हो जाएगा। हिन्दी भाषा को ऐसे प्रयोग से बचाना है तो हिन्दीभाषियों का कर्त्तव्य है कि हिन्दी का बहुलता से प्रयोग करें।

आज देवनागरी कम्प्यूटर के लिए उपयुक्त सिद्ध हो गई है और इसका प्रयोग इन्टरनेट, लैपटॉप, मोबाइल में सर्वाधिक विवर्धित होता जा रहा है। माइक्रोसॉफ्ट के जनक, अमेरिकी निवासी बिल गेट्स ने अधिकारिक रूप से यह कहा है कि संस्कृत कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा और इसकी देवनागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। इस लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृत व हिन्दी भाषाएँ सर्वाधिक तार्किक और तथ्यपरक भाषाएँ हैं।

भाषा का सौंदर्य उसके शब्दों के साथ उसकी लिपि में भी निहित होता है। यदि हम अंग्रेजी भाषा को देवनागरी में लिखे जैसा कई बार लिखा जाता है संस्थाओं के नाम जिसका हिन्दी प्रारूप ज्ञात नहीं होता है तो उनके नाम अंग्रेजी में होते हुए देवनागरी में लिख जाते हैं यथा - इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी । कई अंग्रेजी तकनीकी के शब्द भी यथावत् देवनागरी में लिखना सुगम होता है। तकनीकी से जुड़े कई शब्द यथा- कम्प्यूटर, माउस, हैंग हो जाना, प्रिंटर, इनबॉक्स, डाउनलोड, अपलोड, डेस्क टाप, एप्लिकेशन, फोल्डर, स्क्रीन आदि शब्द ऐसे हैं, जिन्हें हम देवनागरी में लिखते हैं। लेकिन देवनागरी लिपि में अंग्रेजी भाषा को लिखना सुगम नहीं होता है क्योंकि अंग्रेजी भाषा में उच्चारण कुछ होता है और लिखा कुछ जाता है। अतिशीघ्र समझ नहीं आता । जबकि देवनागरी में जैसा हम बोलते व सुनते हैं, वैसा ही लिखते हैं। किसी भाषा को उसकी लिपि में न लिख कर किसी और भाषा में लिखा जाए तो यह औचित्यपूर्ण नहीं है।

यूरोप के देश जापान, चीन, फ्रांस, जर्मनी, वियतनाम, पोलैंड आदि सभी अपनी भाषा का ही प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा है, लेकिन ये देश अंग्रेजी का प्रयोग अपनी भाषा के लिए नहीं करते हैं।जापान, चीन, कोरिया तकनीकी के क्षेत्र में अग्रणी है, किन्तु ये अपनी ही भाषा जापानी व चीनी का ही प्रयोग करते हैं, किसी अन्य भाषा का नहीं। जबकि हमारे देश में 1979 से सभी प्रशासनिक सेवाओं में पहली बार अपनी भाषा हिन्दी में लिखने की छूट मिली उसके पहले केवल अंग्रेजी भाषा में लिखा जाता था। भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से हम किसी भी भाषा के शब्दों का प्रयोग सुगमता की दृष्टि से अपनी भाषा में कर सकते हैं। जैसा कि विख्यात हिन्दी साहित्यकार कमलेश्वर ने कहा था 'हिन्दी तब तक विकसित नहीं हो सकती जब तक कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसका गहरा सम्बंध नहीं होगा।' यदि हमें हिन्दी का प्रचार व विस्तार करना है तो निश्चित रूप से क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हमें तालमेल व सामञ्जस्य विकसित करना होगा। आज लोग ऐसा भी मानते हैं कि अंग्रेजी पढ़ने से रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध होंगे इसलिए लोगों की अभिरुचि अंग्रेजी भाषा के प्रति अधिक हो गई। अंग्रेजी जानने से उन्हें विदेशों में रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन हर भाषा व उसकी लिपि का महत्व उस देश के लिए सर्वोपरि होना चाहिए। भारत में तो राजकाज की भाषा हिन्दी है, अतएव हिन्दी भाषा का सर्वाधिक प्रयोग करना चाहिए।

यदि देवनागरी लिपि को इसी प्रकार रोमन लिपि में लिखने का क्रम अभिवर्धित होता रहा तो अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं पर भारत में संकट उपस्थित हो जाएगा। हिन्दी तो रोमन लिपि में लिखी जाने लगेगी और अंग्रेजी की केवल लिपि शेष रह जाएगी। दोनों भाषाओं के व्याकरण, लेखन, प्रयोग, उच्चारण परिवर्तित होने लगेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम समय रहते सचेत हो जाएँ और हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करें।

राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्

संस्कृत-रूपान्तरण-कर्त्ता
आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपति-सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्ता
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरीजी महाराज
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

(गताङ्कादग्रे) **बाह्य-रिपोः सा क्षतिर्न,याऽऽभ्यन्तर-रिपोर्बोभवीत्यपूर्या ।**
राष्ट्रं रिक्तं कुरुते, मूषकवदाभ्यन्तरो घोरतर रिपुः ॥50॥

बाहरी शत्रु से वह क्षति नहीं होती है जो की भीतरी शत्रु से अपूर्णीय क्षति होती है। भीतरी घोरतर शत्रु मूषक की भाँति ही राष्ट्र को खोखला बना देता है।

Outside enemies cannot do so much harm as inside ones can. Awful inside enemies like mouse destroy the country from the inside. |50|

तस्कर - करचौरा अपि, सन्ति न्यूना नाभ्यन्तर-रिपुभ्योऽत्र ।
दृष्टिरिह तथा रक्ष्या, यथा मूषकेषु विडालेन रक्ष्यते ॥51॥

तस्कर और कर की चोरी करने वाले भी भीतरी शत्रुओं से यहाँ कम नहीं होते हैं। इन पर उसी प्रकार तीव्र दृष्टि रखनी चाहिए, जिस प्रकार बिलाव के द्वारा चूहों पर रखी जाती है।

Inside enemies are also the smugglers and those who steal the taxes. They should be carefully watched like the cat watches the mouse.

शिक्षा सम्प्रति तथा न, प्रदीयते यतः स्युरुत्तम - संस्काराः ।
अतः पठित - लिखितेष्वपि, भ्रष्टाचार-लिप्तता दृष्टिपथमेति ॥52॥

इस समय वैसी शिक्षा प्रदान नहीं की जातीं, जिससे उत्तम संस्कार पैदा होते है। इसीलिए आज के पढ़े लिखे लोगों में भी भ्रष्टाचार में लिप्तता दृष्टिपथ में आ रही है।

Nowadays, that education is not given which through which the highest character can be achieved. Because of that even educated people get caught in the web of corruption.

मानस - प्रदूषणमेव, सर्वानर्थमूलमिति किं ज्ञायते न ? ।
ज्ञायते यदि किं तन्न, समूलमुच्चाट्यते सद्यः क्षतिकरम् ? ॥53॥

मन का प्रदुषण ही सभी अनर्थों का मूल है, क्या यह जानना नहीं जाता ? यदि जाना जाता है तो क्यों नहीं वह क्षति करने वाला तत्काल मूलसहित उच्चाटित कर दिया जाता ?

Who does not know that the pollution of the mind is the root cause of all these problems? And if it is known why it is not immediately uprooted?

संस्कृत-शिक्षैवैका, मानस-प्रदूषणं विशोधयति सुतराम् ।
किंन्त्वद्य प्रशासनं तु, सुधीभिरपि विज्ञापितं नैव शृणोति ॥54॥

एक संस्कृत - शिक्षा ही मन के प्रदूषण को सर्वथा विशुद्ध कर देती है, परन्तु इस सम्बन्ध में सुधीजनों के द्वारा भी विज्ञापित किया हुआ प्रशासन तो सुनता ही नहीं है।

Only Sanskrit education can completely remove the pollution of the mind, but the administration does not even listen to the presentation of the wise people.

अधिगत-संस्कृत-शिक्षो, भवति सच्चरित्रः स्वीय-राष्ट्रभक्तः ।
न हि स तत् कर्म करोति , यद् राष्ट्रं हानिं प्रापयतु कदाचन ॥55॥

संस्कृत की शिक्षा प्राप्त किया हुआ व्यक्ति सच्चरित्र और स्वराष्ट्र-भक्त हुआ करता है। वह कार्य नहीं करता है, जो कभी राष्ट्र को हानि पहुँचाये।

Sanskrit educated person is of good character and a patriot. He will never do the things which will harm the nation.

स न भवत्यातङ्ककृत्, तस्करता-लिप्त आयकर-चौरो वा ।
सार्वजनिक-सम्पदेऽपि, हानिं न ददाति स कदापि कुत्रापि च ॥56॥

वह संस्कृत की शिक्षा प्राप्त किया हुआ व्यक्ति न आतङ्ककारी होता है, न तस्करता में लिप्त होता है अथवा आयकर की चोरी करने वाला ही। सार्वजनिक सम्पदा को भी वह कभी कहीं हानि नहीं देता है।

Sanskrit educated person becomes neither terrorist nor gambler, and he does not steal taxes. He never damages public property.

(क्रमशः)

ISSN : 2582-6360

हिन्दी दिवस व श्राद्धविज्ञान-पितृमहोत्सव की झलकियाँ

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org